International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 28-29

नए सामाजिक आंदोलन और लोकतांत्रिक राजनीतिक गतिशीलता

डॉ0 मेहराराम
रिचर्स फैलो, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत।

सारांश
नव सामाजिक आंदोलन ऐसे सामाजिक आंदोलन है जो मानव–जीवन में फैले हुए अन्याय के प्रति नई चेतना से प्रेरित होकर समकालीन विश्व के कुछ हिस्सों में उभर कर सामने आए हैं। इनमें नारी–अधिकार आंदोलन, पर्यावरणवादी आंदोलन, उपभोक्ता आंदोलन, नागरिक अधिकारों की मांग, दलित आंदोलन, छात्र आंदोलन और शांति आंदोलन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये आंदोलन विश्व को विवेक सम्मत रूप में ढालना चाहते हैं। नव–सामाजिक आंदोलनों की शुरूआत 1960 के दशक में शुरू हुई। नव–सामाजिक आंदोलन मुख्यतः युवा, सुशिक्षित और मध्यवर्गीय नागरिकों के आंदोलन है जो नागरिकों की वैयक्तिक स्वतंत्रता और मानव मात्र के हित को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण के संरक्षण और शांति के वातावरण को बढ़ावा देना चाहते हैं। इन आंदोलनों में गैर–सरकारी संगठनों और नागरिक समाज की महत्ती भूमिका रही है।

मूल शब्द : सामाजिक आंदोलन, नागरिक अधिकार, शांति, विवेकसम्मत विश्व, समानता, वैयक्तिक स्वतंत्रता, पर्यावरण संरक्षण।

प्रस्तावना
अगर दुनिया के इतिहास को देखा जाए तो वो आंदोलनों की कहानियों से भरा पड़ा है जैसे –दासों के आंदोलन, किसानों–मजदूरों के आंदोलन, धर्म से संबंधित आंदोलन, सूफी–भक्ति आंदोलन इत्यादि। लेकिन दूसरे महायुद्ध के बाद कुछ ऐसे आंदोलन उभरे जिनकी प्रकृति भिन्न है और इसीलिए उन्हें नए सामाजिक आंदोलन कहा जाता हें यह दूसरी बात है कि लेखकों ने इन आंदोलनों के अनेक नाम दिए हैं उदाहरण के लिए फ्रांस के ऐलिन टूरेन ने इसे ''केन्द्रीय सामाजिक संघर्ष'' कहा है। लेकिन कॉल्ट मूफी ने इसे नए लोकतांत्रिक संघर्ष कहा है। अल्वारिस के अनुसार ये लोकप्रिय आंदोलन है लेकिन भारत में रजनी कोठारी ने इन्हें ''वैकल्पिक संघर्ष'' कहा है। नाम चाहे कुछ भी हो यह निश्चित है कि ये आंदोलन नागरिक समाज के मुद्दे से जुड़े हुए है और जो लोकतांत्रिकरण व अपनी सामूहिक पहचान के लिए संघर्षरत है (जे. कोहेन)।

इन आंदोलनों को नए सामाजिक आंदोलन कहा जाता है क्योंकि इनकी कुछ मुख्य विशेषताएँ है जैसे –

1. ये आंदोलन 1960 के बाद प्रकाश में आए है। यद्यपि इनका इतिहास काफी पुराना है, वास्तव में 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ऐसा सामाजिक परिवर्तन हुआ जिसे ऐलिनटूरेन ने उत्तर औद्योगिक समाज कहा और ये आंदोलन इसी सामाजिक परिवर्तन से जुड़े है।
2. इन आंदोलनों का किसी विशेष विचारधारा से कोई संबंध नहीं है – पुराने आंदोलन किसी विचारधारा से जुड़े हुए होते है जैसे – उदारवाद, समाजवाद, साम्यवाद, फासीवाद। लेकिन इन आंदोलनों का आधार विचारधारात्मक नहीं है। ये न तो दामपंथी है न वामपंथी है, न केन्द्रीयपंथी है। उदाहरण के लिए पर्यावरण की सुरक्षा या मानवाधिकारों का संरक्षण ऐसे मुद्दे हैं जिनका किसी विचारधारा से संबंध नहीं हो सकता।
3. पुराने आंदोलन समाज के किसी वर्ग से जुड़े होते थे लेकिन इन आंदोलनों में समाज के सभी वर्ग शामिल है, चाहे गरीब हो निर्धन हो, शहरी हो, ग्रामीण हो, पुरूष हो या महिला हो, उद्योगपति हो या श्रमिक इत्यादि।
4. ये आंदोलन किसी राज्य या राष्ट्र की सीमाओं से परे हैं। यह कहा जा सकता है कि इन्होंने सारी दुनिया को अपने घेरे में लिया है अर्थात् इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय आंदोलन कहा जा सकता है जैसे – महिला आंदोलन, दुनिया के कई देशों में चल रहा है।
5. सामाजिक आंदोलनों का लक्ष्य किसी न किसी रूप में सता प्राप्त करना या उसे प्रभावित करना होता हैं लेकिन इन आंदोलनों में ऐसा नहीं है। आधिकतर आंदोलन सता नहीं बल्कि अपनी पहचान चाहते है। यहाँ तक कि लोगों के जीवन को सुरक्षित रखना चाहते है और इसीलिए इंग्लैण्ड के एंथोनी गिडिग्स ने ऐसे आंदोलनों को ''जीवन की राजनीति'' (लाइफ ऑफ पॉलिटिक्स) कहा है, जबकि कुछ अन्य लेखक जैसे फ्रेंक और फुवेनट्स ने इसे परिचय की राजनीति कहा है।

नए सामाजिक आंदोलन कुछ नए मुद्दों को लेते है जैसे – पर्यावरण की सुरक्षा, मानव अधिकारों का संरक्षण, सामाजिक शोषण का अन्त, लैंगिक समानता, मूलभूत अधिकारों की मांग और संवैधानिक नैतिकता इत्यादि और इसीलिए इसमें हर तरह के लोग शामिल हैं। रजनी कोठारी कहता है कि इनकी कार्यसूची ही भिन्न है। लेकिन फ्रांस के फोकोल्ट ने यह सिद्ध किया है कि ये समाज के उपेक्षित वर्गों को ऊपर उठाते हैं और उनका मुख्य रूप से सांस्कृतिक आयाम हैं। विल किमलिका कहता है कि इन्हीं आंदोलनों ने बहुसंस्कृतिवाद को उछाला है।

नए सामाजिक आंदोलनों के सिद्धान्त
20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में नए सामाजिक आंदोलन अध्ययन के एक महत्त्वपूर्ण विषय हो गए है। इस पर फ्रांस, ब्रिटेन, इटली, अमेरिका और भारत के समाजशास्त्रियों ने काफी लिखा है। उनके वर्णनों को देखकर कुछ सिद्धान्त बनाए गए है जो इन आंदोलनों की उत्पति, विकास व प्रकृति पर प्रकाश डालते हैं। इनमें से चार सिद्वान्तों का वर्णन किया जा रहा है।

1. **वंचन का सिद्धान्त** – कुछ लेखक जैसे उेविड राईसमैन और हन्ना आरेण्ट यह मानते हैं कि इन आंदोलनों का संबंध सामाजिक जीवन से है। इसीलिए समाज में जो लोग शोषित या वंचित है वे ही इन आंदोलनों को चला रहे है। महिलाओं और दलितों के आंदोलन इसी कोटि में आते हैं क्योंकि अब ये वर्ग अपनी उपेक्षा या दमन को सहन नहीं कर सकते। **किमलिका** कहता है कि यूरोप के अनेक देशों में कुछ अल्पसंख्यक है, जो दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में रहना पसंद नहीं करते। अभी तक समाज के उपेक्षित वर्णों ने अलगाव का रूख अपनाया था लेकिन अब वे राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय हो गए और इसीलिए ऐसे आंदोलन प्रकाश में आए हैं।
2. **विचारधारात्मक तटस्थता का सिद्धान्त** – कुछ लेखक जैसे जी. कोहेन, मेलुकी (इटली) इस बिन्दु पर बल देते है कि इन आंदोलनों के पीछे किसी विचारधारा का हाथ नहीं है न ये दामपंथी है न वामपंथी है। यही वजह है कि इनमें शहरी या ग्रामीण, श्वेत या अश्वेत नर या नारी अर्थात् सभी लोग सम्मिलित दिखाई देते हैं। पुराने समाजशास्त्री यह मानते थे कि मध्यमवर्ग वाले आंदोलन चलाते है लेकिन रजनी कोठारी कहते हैं कि ये आंदोलन नया मध्यमवर्ग चला रहा है जो जागरूक है और हर प्रकार के शोषण के खिलाफ आवाज उठाता है। क्लाज ओफे (फ्रांस) नवमार्क्सवादी है लेकिन वो भी यही कहता है कि इन आंदोलनों में वर्ग संघर्ष की भूमिका नहीं हैं क्योंकि इसमें धनी व निर्धन सभी शामिल है।
3. **विवेकशीलता पर आधारित तथा संसाधनों के संचालन का सिद्धान्त** – प्रत्येक आंदोलन किन्हीं संसाधनों से चलता है लेकिन यह भी जरूरी हैं कि उस आंदोलन का कोई विवेकशील आधार हो। 1960 के बाद इस दिशा में प्रगति हुई और इसीलिए ओल्सेन, गेमसेन और जेनपिन ने इस बिन्दु पर बल दिया कि उत्तर–औघोगिक समाज में ऐसे संसाधन उपजे हैं जिन्होंने इन आंदोलनों को बल प्रदान किया है, अब यातायात और संदेशवाहन के नए साधन आ गए हैं। दुनिया के देशों के बीच निकटता स्थापित हो रही है इसीलिए ऐसे आंदोलन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देखे जाते हैं। टेलीफोन, टेलीविजन व इंटरनेट ने दूर दूर के लोगों को जोड़ दिया। यदि ऐसे संसाधन उपलब्ध होंगे तो आंदोलनों का उभरना भी स्वाभाविक हो जाएगा। हम देख सकते हैं कि आज पर्यावरण की सुरक्षा से संबंधित आंदोलन सारी दुनिया में चल रहा है।
4. **लक्ष्योन्मुखी या परिचयोन्मुखी सिद्धान्त** – अनेक लेखकों ने इस बिन्दु पर भी बल दिया कि नए सामाजिक आंदोलनों का एक निश्चित लक्ष्य है और वे अपनी पहचान बनाना चाहते है। चाहे वे अमरीका के नीग्रो हैं या रूस में यहूदी या ईराक में कुरद, श्रीलंका में तमिल या अनेक देशों में फैले हुए दलित लोग। मुख्य समस्या यह है कि समाज व राज्य उन्हें मान्यता नहीं देते। इसीलिए यह आंदोलन अपनी मान्यताएँ स्थापित करना चाहते है। फ्रांस का एलिन टूरे इस मत का समर्थन करता है कि इन आंदोलनकारियों को उत्तर–औद्योगिक समाज की परिस्थितियाँ समर्थन दे रही है। किसी समय मार्क्स ने कहा था कि अलगाव पूँजीवादी समाज का अभिशाप है। एलिन टूरे इसी बिन्दु से प्रेरणा लेता है और कहता है कि नीग्रो हो या दलित या महिला या अल्पसंख्यक सभी के मन में एक रोष है कि समाज इन्हें मान्यता नहीं देता। इसीलिए ऐसे आंदोलन कभी–कभी हिंसात्मक रूप धारण कर लेते हैं। मुख्य बात यह है कि सिविल सोसाइटी में समाज के सभी वर्गों को भागीदारी प्राप्त हो।

बीसवीं शताब्दी में ऐसे आंदोलन प्रकट हुए जो अतीत में नहीं थे। मुख्यतः पर्यावरण की सुरक्षा संबंधी आंदोलन, मानव अधिकारों के आंदोलन, लैंगिक न्याय एवं समानता संबंधी आंदोलन, लोकतांत्रिक वैधता संबंधी आंदोलन, वैश्विक शांति एवं निरस्त्रीकरण संबंधी आंदोलन प्रमुख रूप से उभरे। इन आंदोलनों को उभारने में नागरिक समाज एवं गैर–सरकारी संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राजनीतिक सिद्धान्त में इन नए सामाजिक आंदोलनों ने अपनी महत्वपूर्ण जगह बना ली है और इसीलिए अब कुछ नए मुद्दे भी सामने आए हैं, जैसे – हरित राजनीति, महिलावादी राजनीति, बहुसंस्कृतिवाद, पर्यावरणीय महिलावाद इत्यादि। नए सामाजिक आंदोलनों में पर्यावरण की सुरक्षा और महिलाओं के साथ लैंगिक न्याय अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन आंदोलनों का स्वरूप सार्वभौम है। अब लोकतंत्र के युग में सभी नागरिकों के अधिकारों एवं अवसरों की समानता निश्चित की गई लेकिन धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूढ़ियाँ रास्ते में बड़ी बाधाएँ खड़ी करती है जिनका निराकरण करना आवश्यक है। नर एवं नारी के बीच प्राकृतिक अंतर है और रूसो के शब्दों में प्राकृतिक असमानता को दूर नहीं किया जा सकता लेकिन इस आंदोलन के नेतागण इस प्राकृतिक सत्य को नहीं मानती। वे प्रत्येक क्षेत्र में समानता एवं स्वतंत्रता की मांग करती हैं ताकि अपने अधिकारों के साथ–साथ सुरक्षा भी मिले। एमनेस्टी इंटरनेशनल जैसी संस्थाओं की इस तरह के आंदोलनों में सार्थक भूमिका रही है। अधिकारों के बिना मानव किसी प्रकार की प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए हमें मानवअधिकारों का सम्मान करते हुए कानून के समक्ष समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में राजनीतिक सहभागिता मिलनी चाहिए तभी नए सामाजिक आंदोलन लोकतांत्रिक राजनीतिक गतिशीलता में सार्थक होंगे।

संदर्भ

1. घनश्याम शाह, ''भारत में सामाजिक आंदोलन'', रावत पब्लिशर्स, नई दिल्ली, वर्ष 2009.
2. जीन एल. कोहेन, ''रिथिकिंग सोशल मूवमेंट्स'', मेकमिलन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, वर्ष 1994.
3. हमजा अल्वी, ''पीजेन्ट एण्ड रिवोल्यूशन इन साउथ एशिया'', मेकमिलन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, वर्ष 1973.
4. रूबिन आर. बारनेट, ''दि सिविल लिबर्टीज मूवमेंट'' एशियन सर्वे, मार्च 2007.
5. जोसेफ आर. गेसफील्ड, ''न्यू सोशल मूवमेंट्स : फ्रॉम आइडियोलॉजी टू आइडेन्टी'', रूटलेज पब्लिशर्स, लंदन, वर्ष 1994.
6. द हिन्दू समाचार पत्र, 12 मार्च 2017.
7. डॉन्टेला डेला पोट्रा, ''सोशल मूवमेंट्स : एन इंट्रोडक्शन'', दिल्ली पब्लिशर्स, लंदन, वर्ष 2006.